फसल बीमा, कितना सफल

सुनील

देश में किसान आत्महत्याओं के वर्ष 2010 के नए आंकड़े आ चुके हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो ने 1995 से किसानों की आत्महत्या के आंकड़े अलग से रखना शुरू किया है। तब से 2010 तक सोलह वर्षों में भारत में ढाई लाख से ज़्यादा किसान खुदकुशी कर चुके हैं। यह साफ है कि भारत के किसान एक अभूतपूर्व संकट से गुज़र रहे हैं। हमारी सरकारें और उनकी नीतियां व योजनाएं उन्हें इस संकट से उबारने में बुरी तरह अफसल रही हैं।

ऐसी ही एक योजना फसल बीमा की है, जिसका घोषित मकसद ही फसल नष्ट होने की दशा में क्षतिपूर्ति करना और किसान की मदद करना है। लगातार हो रही किसान आत्महत्याएं कृषि बीमा की सरकारी योजनाओं की विफलता की खुली घोषणा है।

वैसे तो भारत में फसल बीमा के प्रयोग काफी समय से चल रहे हैं। किन्तु 1999-2000 की रबी फसल से राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना व्यापक रूप से शुरू हुई, जिसका क्रियान्वयन भारतीय कृषि बीमा कंपनी नामक एक सरकारी कंपनी देश के 25 राज्यों और 2 केन्द्र शासित प्रदेशों में कर रही है।

तमाम खाद्य फसलों, तिलहन फसलों और कुछ बागवानी की फसलों को इस योजना में शामिल किया गया है। ज़्यादातर यह योजना बैंकों और सहकारी संस्थाओं के माध्यम से संचालित हो रही है। जब किसान वहां से कृषि ऋण लेते हैं, तो उनकी कर्ज़ राशि में से प्रीमियम राशि काटकर बीमा कंपनी को भेज दी जाती है। यदि फसल नष्ट हुई, तो सरकारी राजस्व कर्मचारी विभिन्न क्षेत्रों में फसल कटाई परीक्षण करते हैं। पैदावार का अनुमान लगाकर उसकी तुलना पिछले तीन या पांच साल की औसत पैदावार से की जाती है। यदि नुकसान एक निश्चित सीमा से ज़्यादा है तो बीमे का लाभ किसानों को मिलता है।

किन्तु इस फसल बीमा योजना के बारे में किसानों की कई शिकायतें हैं। पूरे देश में कहीं भी किसान इससे संतुष्ट नहीं हैं। इसकी सबसे बड़ी समस्या इसकी इकाई है। ज़्यादातर फसल के नुकसान का आकलन तहसील या तालुका स्तर पर होता है। ऐसी हालत में यदि फसल का नुकसान पूरी तहसील में न होकर उसके एक हिस्से में होता है, तो बीमे का लाभ नहीं मिलता है। किसान संगठनों द्वारा काफी आवाज़ उठाने पर अब प्रयोगात्मक तौर पर कुछ जगहों पर इकाई को घटाकर पटवारी हलका या ग्राम पंचायत बनाया जा रहा है।

इस योजना में दूसरी कमी यह है कि बीमा राशि सीधे किसानों को न मिलकर बैंक या सहकारी संस्था में उनके कर्ज़ खाते में जमा कर दी जाती है, जबकि मुसीबत के समय उन्हें नकदी की भी ज़रूरत होती है। इस दृष्टि से इस योजना का फायदा किसानों से ज़्यादा बैंकों को मिलता है। तीसरी समस्या यह है कि बीमा की राशि का हिसाब लगाकर उसे किसानों के खाते में डालने में काफी देरी होती है - छः महीने से लेकर एक साल तक का समय लग जाता है।

किसानों की सबसे बड़ी शिकायत इस योजना के अनिवार्य तथा अस्वैच्छिक होने के बारे में है। जो भी किसान बैंक या सहकारी संस्था से ऋण लेता है, उससे बिना पूछे अनिवार्य रूप से प्रीमियम काट लिया जाता है। उसे कोई जानकारी या रसीद या पॉलिसी का कागज़ भी नहीं दिया जाता। वैसे अऋणी किसानों द्वारा स्वेच्छा से प्रीमियम जमा करके बीमा कराने का भी प्रावधान है, किंतु ऐसे किसानों की संख्या बहुत कम होती है। इसी से ज़ाहिर होता है कि यह योजना किसानों को पसंद नहीं है, फिर भी उन पर थोपी जा रही है।

इधर वैश्वीकरण की बयार के साथ कृषि बीमा के क्षेत्र में भी विदेशी कंपनियां घुसी हैं तथा नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। ऐसा ही एक प्रयोग मध्यप्रदेश के होशंगाबाद ज़िले के किसानों के साथ हुआ। खरीफ में सोयाबीन यहां की प्रमुख

फसल है। इस वर्ष लगातार बरिश के कारण यहां सोयाबीन बरबाद हुई। जहां एक एकड़ में छः-सात क्विंटल सोयाबीन पैदा होती थी, वहां 20 किलो से लेकर डेढ़-दो क्विंटल तक सोयाबीन निकली है। इसी के सदमे में वहां 11 से 14 अक्टूबर के बीच चार दिन में तीन किसानों ने आत्महत्या कर ली। जब संकटग्रस्त किसानों ने फसल बीमा के बारे में पूछताछ की तो पता लगा कि पुरानी योजना के स्थान पर नई 'मौसम आधारित फसल बीमा योजना' वहां लागू कर दी गई है। दो निजी बीमा कंपनियों के माध्यम से संचालित इस योजना में उन्हें बहुत मामूली राशि देकर ठेंगा बता दिया गया है।

इस योजना के तहत होशंगाबाद ज़िले में सोयाबीन फसल के लिए 49,175 किसानों से बीमा प्रीमियम काटा गया था। कुल बीमित राशि 222 करोड़ रुपए की थी, जिसके लिए कंपनियों को दस प्रतिशत यानी 22 करोड़ 20 लाख रुपए का प्रीमियम मिला था। किंतु सोयाबीन की फसल का व्यापक नुकसान होने के बावजूद कंपनियों ने 222 करोड़ की बीमा राशि में से मात्र 17 करोड़ 15 लाख रुपए के क्षतिपूर्ति का ही हिसाब लगाया। यानी प्रीमियम राशि में से भी 5 करोड़ 5 लाख रुपए उन्होंने बचा लिए।

जब आपदा और विनाश के समय इतनी अच्छी कमाई वे कर रही हैं, तो सामान्य वर्षों में कितना कमाएंगी, इसका अंदाज़ लगाया जा सकता है। दरअसल इस मौसम बीमा के नियम, शर्तें तथा फार्मूले चालाकी से ऐसे बनाए गए हैं कि असामान्य वर्षों में भी कंपनी को मामूली राशि ही देना पड़े।

सोयाबीन के मौसम बीमा में प्रति हैक्टर बीमा राशि 18000 रुपए को तीन हिस्सों में बांटा गया है - कम वर्षा, अधिक वर्षा और लगातार सूखे दिन। फिर प्रत्येक की राशि को तीन या चार अवधि के जोखिम में बांट दिया गया है। हर अवधि के लिए सीमाएं बनाई गई हैं, जिनका उल्लंघन होने पर बीमा का लाभ मिलेगा। हर अवधि में बीमा लाभ की अधिकतम राशि भी तय कर दी गई है। स्पष्ट है कि पूरी बीमा राशि तो किसान को कभी नहीं मिल सकती, प्रतिकूल मौसम होने पर भी बहुत कम राशि ही किसानों को मिलेगी।

होशंगाबाद ज़िले में मौसम आधारित फसल बीमा गुपचुप तरीके से पिछली रबी फसल में शुरू हुआ था। उसमें भी निजी बीमा कंपनी ने काफी कमाई की थी। गेहूं फसल के लिए उसे 15 करोड़ 73 लाख रुपए का प्रीमियम मिला था, किंतु उसने किसानों को मात्र 85 लाख रुपए का भुगतान किया था। चने की फसल के लिए 1 करोड़ 44 लाख का प्रीमियम मिला, किन्तु मात्र 26 लाख रुपए की राशि उसे किसानों को देना पड़ी। यह सही है कि ये फसलें सामान्य थी, इसलिए किसानों को ज़्यादा मुआवज़ा देने की ज़रूरत नहीं पड़ी। यह कैसी बीमा योजना है जिसमें सामान्य हालत और बड़ी आपदा दोनों वक्त किसान तो लुट रहा है और बीमा कंपनियां भारी मुनाफा ले जा रही हैं?

रबी और खरीफ की इन तीन फसलों को मिलाकर इन निजी बीमा कंपनियों ने एक ही ज़िले से एक ही वर्ष के अंदर 21 करोड़ रुपए से ज़्यादा की कमाई कर ली है।

इस योजना में उनका प्रशासनिक खर्च भी न के बराबर है। उन्हें तो किसानों से संपर्क भी नहीं करना है। प्रीमियम की राशि तो बैंकों व सहकारी संस्थाओं द्वारा काटकर चेक बनाकर किसानों की सूची के साथ उन्हें भेज दी जाती है। दो कंपनियों में से एक ने तो होशंगाबाद ज़िले में अपना कार्यालय भी खोलने की ज़रूरत नहीं समझी। उनका एकमात्र खर्च उस निजी कंपनी को भुगतान का है, जिसे तहसील स्तर पर मौसम केन्द्र खोलकर वर्षा के आंकड़े मुहैया कराने का काम दिया गया है।

ये दोनों बीमा कंपनियां दो विदेशी बीमा कंपनियों द्वारा भारतीय पार्टनरों के साथ बनाए गए गठजोड़ हैं - इफको-टोकियो जनरल इंश्योरेन्स कंपनी तथा आईसीआईसीआई-लोम्बर्ड इंश्योरेन्स कंपनी। इफको भारत में खाद बनाने वाली सहकारी कंपनी है जिसकी पहुंच गांव-गांव में लाखों सहकारी संस्थाओं तक है। फसल बीमा के क्षेत्र में सक्रिय अन्य कंपनियां एचडीएफसी-अरगो तथा चोलामंडलम-एमएस भी इसी तरह की हैं। बीमा क्षेत्र में विदेशी शेयरधारिता की सीमा को वर्तमान 26 प्रतिशत से ज़्यादा करने की मुहिम भी चल रही है।

मौसम बीमा जैसी योजनाएं भी पश्चिम से आई हैं और इन्हें लाने में विश्व बैंक की सिफारिशों का बड़ा हाथ रहा

है। इस चक्कर में हमारे शासकों ने यह भी भुला दिया कि दोनों जगह परिस्थितियां काफी अलग-अलग हैं। जैसे वहां सैकड़ों व हज़ारों एकड़ के बड़े किसान व कंपनियां हैं, हमारे यहां दो-चार एकड़ के छोटे-छोटे किसान बहुतायत में हैं। वहां के बड़े किसान व कृषि कंपनियां संतुष्ट होकर स्वेच्छा से बीमा करवाते हैं, किंतु हमारे विशेषज्ञों-नौकरशाहों ने ज़्यादा होशियारी दिखाते हुए उन्हें ज़बरदस्ती किसानों पर थोप दिया है।

इन बीमा कंपनियों के खिलाफ बदमाशियों की शिकायतें आम हैं। होशंगाबद ज़िले में ही पिछले वर्ष लोम्बर्ड कंपनी ने सरकारी मदद से रेशम मज़दूरों का स्वास्थ्य बीमा किया था, किंतु उन्हें काफी समय तक स्वास्थ्य कार्ड नहीं मुहैया कराए तथा अस्पताल भी निर्धारित नहीं किया। इस ज़िले में स्कूल विद्यार्थियों के दुर्घटना बीमा भी इनके माध्यम से हुए हैं किन्तु दुर्घटना के शिकार 30 विद्यार्थियों में से एक को भी भुगतान नहीं दिया गया और उस कंपनी को ब्लैक लिस्ट करना पड़ा।

विडंबना यह है कि ये सारी बीमा योजनाएं सरकार के अनुदान एवं सक्रिय सहयोग से क्रियान्वित हो रही हैं। जिस पीपीपी या 'सरकारी-निजी साझेदारी' का इतना हल्ला है, उसकी ज़मीनी हकीकत की यह एक बानगी है। पैसा सरकार का, मुनाफा कंपनी का और नुकसान जनता का, यह पीपीपी का असली मतलब है। वैश्वीकरण के दौर में जालसाज़ी, ठगी और छलकपट के मामलों में एकाएक बढ़ोतरी हुई है।

खेती के जोखिम की समस्या का हल फसल बीमा से न हो पाने के पीछे एक बुनियादी कारण भी है। बहुत पहले से भारत की खेती को 'मानसून का जुआ' कहा जाता है। किंतु तमाम प्रगति और विकास के बाद भी खेती की यह जुआ-प्रकृति कम नहीं हुई है, बल्कि आधुनिक खेती के चलते कई नए तरह के जोखिम इसमें जुड़ गए हैं। अब भारत का किसान मौसम के जोखिम के अलावा, सरकारी तंत्र के जोखिम (समय पर खाद, बिजली या नहर का पानी न मिल पाना, समर्थन मूल्य पर खरीदी न होना), आधुनिक टेक्नॉलॉजी के जोखिम (भूजल स्तर नीचे जाना, कीटों में प्रतिरोध विकसित होना, मिट्टी की उर्वरता नष्ट होना, आधुनिक बीजों का कमज़ोर होना) तथा वैश्वीकृत होते बाज़ार के जोखिम (उपज के दाम कम हो जाना, लागतें बढ़ जाना, खाद-बीज नकली निकल जाना) भी झेल रहा है। खेती काफी महंगी, ज़्यादा पूंजी और ज़्यादा कर्ज़ वाली हो गई है, इसलिए फसल नष्ट होने पर किसान को ज़्यादा बड़ा झटका लगता है।

आधुनिक बीजों में मौसम के उतार-चढ़ाव तथा रोगों व कीटों को बर्दाश्त करने की शक्ति कम होती है, इससे भी जोखिम बढ़ा है। देशी बीज इस मायने में बेहतर थे। फसलों की विविधता नष्ट होने से भी जोखिम बढ़ा है। एक ही फसल होने से नुकसान व्यापक होता है। पारंपरिक ग्रामीण जीवन में किसानों के पास मवेशी, भेड़-बकरियां, मुर्गियां आदि भी हुआ करती थीं। वे भी मुसीबत के समय में एक तरह के बीमा का काम करती थीं। तब खेती, पशुपालन और कई अन्य धंधे मिले-जुले परस्पर निर्भर हुआ करते थे। अब विशिष्टीकरण के आधुनिक ज़माने में सब अलग-अलग हो गए हैं और किसान ज़्यादा बेसहारा हो गया है। इस तरह से खेती अब महज़ मानसून का नहीं, सरकारी तंत्र, टेक्नॉलॉजी और बज़ार का जुआ भी बन गई है। विशेषज्ञ व अफसर महज़ मौसम पर आधारित बीमा से काम चलाने की बात सोच रहे हैं। किंतु जब तक आधुनिक खेती के इस चरित्र व दिशा को नहीं बदला जाएगा, तब तक मात्र फसल बीमा योजनाओं से खेती के संकट को दूर नहीं किया जा सकेगा।

मौसम आधारित फसल बीमा जैसी योजना दरअसल आधुनिक विकास, पूंजीवाद और भूमंडलीकरण के कारण पैदा हो रहे संकटों का सतही बाज़ारवादी समाधान पेश करने की कोशिश है। किंतु बाज़ारवाद तो स्वयं एक समस्या है और संकटों का कारण है। लिहाज़ा, ऐसे समाधानों का असफल होना तय है। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत सजिल्द **उपलब्ध है**

स्रोत के पिछले अंक